भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

इस्लाम में संपरिवर्तन द्वारा द्विविवाह का निवारण करना- उच्चतम न्यायालय के विनिर्णयों को कानूनी प्रभाव देने के लिए प्रस्ताव

रिपोर्ट सं0 227

अगस्त, 2009

भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

(रिपोर्ट सं0 227)

इस्लाम में संपरिवर्तन द्वारा द्विविवाह का निवारण करना- उच्चतम न्यायालय के विनिर्णयों को कानूनी प्रभाव देने के लिए प्रस्ताव

केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार को

डा0 न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्, अध्यक्ष, भारत का विधि और द्वारा

5 अगस्त, 2009 को प्रस्तुत की गई ।

18वें विधि आयोग का 1 सितंबर, 2006 से तीन वर्ष की अवधि के लिए भारत सरकार के विधि और न्याय मंत्रालय के विधि कार्य विभाग, नई दिल्ली के तारीख 16 अक्तूबर, 2006 के आदेश सं0 ए-45012/1/2006-प्रशा0III (वि.का.) द्वारा गठन किया गया था ।

विधि आयोग अध्यक्ष, सदस्य-सचिव, एक पूर्णकालिक सदस्य और 7 अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बना है ।

अध्यक्ष

माननीय डा0 न्यायमूर्ति ए.आर.लक्ष्मणन्

सदस्य-सचिव

डा0 ब्रह्म ए. अग्रवाल

पूर्णकालिक सदस्य

प्रो0 डा0 ताहिर महमूद

अंशकालिक सदस्य

डा0 (श्रीमती) देविन्दर कुमारी रहेजा

डा0 के.एन. चंद्रशेखरन पिल्लै

प्रो0 (श्रीमती) लक्ष्मी जमभोलकर

श्रीमती कीर्ति सिंह

श्री न्यायमूर्ति आई.वेंकटनारायण

श्री ओ.पी. शर्मा

डा0(श्रीमती) श्यामल्हा पप्पू

विधि आयोग भारतीय विधि संस्थान भवन,
दूसरी मंजिल, भगवान दास रोड,
नई दिल्ली- 110001 में अवस्थित है ।

विधि आयोग कर्मचारिवृंद

सदस्य-सचिव

डा0 ब्रह्म ए. अग्रवाल

अनुसंधान कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव एवं विधि अधिकारी
श्रीमती पवन शर्मा	:	अपर विधि अधिकारी
श्री. जे.टी. सुलक्षण राव	:	अपर विधि अधिकारी
श्री ए.के. उपाध्याय	:	उप विधि अधिकारी
डा. वी.के.सिंह	:	सहायक विधि सलाहकार
डा. आर.एस.श्रीनेत	:	अधीक्षक (विधिक)

प्रशासनिक कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव एवं विधि अधिकारी
श्री डी. चौधरी	:	अवर सचिव
श्री. एस.के. बसु	:	अनुभाग अधिकारी
श्रीमती रजनी शर्मा	:	सहायक पुस्तकालय और सूचना अधिकारी

इस रिपोर्ट का पाठ इंटरनेट पर

http:// www.lawcommissionofindia.nic.in पर उपलब्ध है ।

© भारत सरकार

विधि आयोग

इस दस्तावेज का पाठ (सरकारी चिह्नों को छोड़कर) किसी रूप विधान में या किसी माध्यम से निःशुल्क प्रत्युत्पादित किया जा सकता है परंतु यह कि उसको शुद्ध रूप से प्रत्युत्पादित किया जाए और उसका भ्रामक संदर्भ में उपयोग न कयि जाए । इस सामग्री को सरकार के प्रतिलिप्यधिकार के रूप में अभिस्वीकार किया जाना चाहिए और दस्तावेज का नाम विनिर्दिष्ट किया जाना चाहिए ।

इस रिपोर्ट में संबंधित किसी पूछताछ के लिए सदस्य-सचिव को डाक द्वारा भारत का विधि आयोग, दूसरी मंजिल, भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवान दास रोड, नई दिल्ली- 110001, भारत के पते पर पत्र भेजकर या ई-मेल द्वारा : lci-dla@nic.in पर संबोधित किया जाना चाहिए ।

5 अगस्त, 2009

प्रिय डा0 वीरप्पा मोइली जी,

विषय : इस्लाम में संपरिवर्तन द्वारा द्विविवाह का निवारण करना- उच्चतम न्यायालय के विनिर्णयों को कानूनी प्रभाव देने के लिए प्रस्ताव ।

मैं उपर्युक्त विषय पर भारत के विधि आयोग की 227वीं रिपोर्ट इसके साथ अग्रेषित कर रहा हूं ।

2. पिछले बहुत समय से ऐस विवाहित पुरुष, जिनकी स्वीय विधि द्विविवाह की अनुज्ञा नहीं देती है, दूसरा विवाह करने के लिए इस्लाम में संपरिवर्तित होने की अहितकर और अनैतिक पद्धति का इस विश्वास के साथ सहारा लेते रहे हैं कि ऐसा संपरिवर्तन उन्हें पहला विवाह विघटित किए बिना पुनःविवाह के लिए समर्थ बनाता है ।

3. भारत के उच्चतम न्यायालय ने सरला मुद्गल बनाम भारत संघ, एआईआर 1995 एससी 1531 के मामले में अपने विनिश्चय द्वारा इस पद्धति को अवैध ठहराया है । इस विनिर्णय की पाचं वर्ष पश्चात लिली थॉमस बनाम भारत संघ (2000) 6एसीसी224 में पुनः पुष्टि की गई थी ।

4. उपर्युक्त की दृष्टि से विधि आयोग ने भारत में द्विविवाह संबंधी विद्यमान विधिक स्थिति की इस विषय पर न्यायिक विनिर्णयों के साथ परीक्षा करने के लिए और विभिन्न

कुटुम्ब विधि कानूनों में परिवर्तनों का सुझाव देने के लिए इस विषय को स्वप्रेरणा से हाथ में लिया था ।

5. हमने इस रिपोर्ट में यथा निम्नलिखित सिफारिश की है-

i) हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में, धारा 17 के पश्चात् एक नई धारा 17-क इस आशय की अंतःस्थापित की जाए कोई ऐसा विवाहित व्यक्ति जिसका विवाह इस अधिनियम द्वारा शासित होता है, धर्म परिवर्तन करने के पश्चात् भी तब तक पुनःविवाह नहीं कर सकता है जब तक कि पहला विवाह विधि के अनुसार विघटित नहीं कर दिया जाता है या शून्य और अकृत नहीं घोषित कर दिया जाता है और यदि ऐसा कोई विवाह किया जाता है तो वह शून्य और अकृत होगा और भारतीय दंड संहिता, 1860 की धाराओं 494-495 का लागू होना आकर्षित करेगा ।

ii) एक समरूप उपबंध क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872, पारसी विवाह और विवाह विच्छेद अधिनियम, 1936 और मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939 में यथोचित स्थानों पर अंतःस्थापित किया जाए ।

iii) मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939 की धारा 4 के परंतुक का - जो कहता है कि यह धारा किसी ऐसी विवाहित स्त्री को लागू नहीं होगी जो मूल रूप से गैर मुस्लिम थी, यदि वह अपने मूल धर्म में प्रत्यावर्तित हो जाती है- लोप कर दिया जाए ।

iv) विशेष विवाह अधिनियम, 1954 में इस आशय का एक परंतुक अंतःस्थापित किया जाए कि कोई विद्यमान विवाह, चाहे वह किसी भी विधि से शासित हो, किसी भी पक्षकार द्वारा धर्म परिवर्तन करने के कारण अंतः-धार्मिक हो जाता है तो आगे से वह विशेष विवाह अधिनियम के उपबंधों द्वारा, जिनके अंतर्गत उसके द्विविवाह-विरोधी विवाह उपबंध भी हैं, शासित होगा ।

v) भारतीय दंड संहिता, 1860 की धाराओं 494-495 के अधीन द्विविवाह से संबंधित अपराधों को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में आवश्यक संशोधन द्वारा संज्ञेय बनाए जाएं ।

सादर,

भवदीय,

ह/-

(डा0 ए.आर. लक्ष्मणन)

डा0 एम. वीरप्पा मोइली
विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-100001.

अध्याय 1

प्रस्तावना

मुस्लिम विधियों से भिन्न विवाह विधियां, जो अब देश में प्रवृत्त हैं, द्विविवाह का प्रतिषेध करती हैं और द्विविवाह को शून्य मानती हैं इस कारण से ऐसा कोई विवाह जिसको इन विधियों में से कोई लागू होती है, भारतीय दंड संहिता के द्विविवाह विरोधी उपबंधों को, जो किसी द्विविवाह को लागू होते हैं आकर्षित करती है, यदि वह द्विविवाह होने के कारण शासित होने वाली विधि के अधीन शून्य हैं (धारा 494-495)

पिछले बहुत समय से ऐसेविवाहित पुरुष, जिनकी स्वीय विधि द्विविवाह की अनुज्ञा नहीं देती है, दूसरा विवाह करने के लिए इस्लाम में संपरिवर्तित होने की अहितकर और अनैतिक पद्धति का इस विश्वास के साथ सहारा लेते रहे हैं कि ऐसा संपरिवर्तन उन्हें पहला विवाह विघटित किए बिना पुनःविवाह के लिए समर्थ बनाता है ।

भारत के उच्चतम न्यायालय ने सरला मुद्गल बनाम भारत संघ, एआईआर 1995 एससी 1531 के मामले में अपने विनिश्चय द्वारा इस पद्धति को अवैध ठहराया था । इस विनिर्णय की पांच वर्ष पश्चात लिली थॉमस बनाम भारत संघ (2000) 6एसीसी224 में पुनः पुष्टि की गई थी ।

यद्यपि ये मामले हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 द्वारा शासित विवाहों से संबंधित हैं, किन्तु उनका विनिश्चय आधार प्रकट रूप से ऐसे सभी विवाहों को लागू होगा, जिनको शासित करने वाली विधिया द्विविवाह की अनुज्ञा नहीं देती हैं ।

इस विषय पर उच्चतम न्यायालय का विनिश्चय अब देश की विधि है और फिर भी उसका संपूर्ण देश में व्यापक रूप से अतिक्रमण किया जा रहा है । इस्लाम में

संपरिवर्तन के माध्यम से अविधिपूर्ण द्विविवाह के दो स्पष्ट मामले हाल में मुख्य समाचार बने हैं ।

इन मामलों में से एक में एक महत्वपूर्ण राजनीतिज्ञ, जो पहले से एक पति और पिता था, रहस्यमय रूप से अदृश्य हो गया और एक मास पश्चात् नई दुल्हन के साथ यह दावा करते हुए प्रकट हुआ कि वे मुस्लिम विधि के अधीन, जिसमें वे संपरिवर्तित हो गए थे, पति और पत्नी हो गए थे । यह तथ्य कि इस मामले में नववधू, जो वकील है और अपने राज्य की सरकार में विधि अधिकारी रही है, सार्वजनिक रूप से दावा करती रहती है कि संपरिवर्तक द्विविवाही व्यक्ति के साथउसका विवाह इस्लाम में उसके संपरिवर्तन के कारण, पूर्ण रूप से वैध है, यह स्पष्ट रूप से उच्चतम न्यायालय द्वारा इस संबंध में परिनिर्धारित विधि के बारे में, जो वकीलों के समुदाय में प्रचलित है, अज्ञानता दर्शित करता है ।

दूसरे मामले में एक दूसरा विवाहित व्यक्ति, जो अफगानिस्तान में सेवारत भारत की सेना का एक डाक्टर था, इस्लाम में संपरिवर्तित हो गया जिससे कि वह उस अफगान मुस्लिम लड़की से, जो द्विभाषीय के रूप में उसकी सेवा कर रही थी, विवाह कर सके । वह बिचारी लड़की उसके वैवाहिक पूर्ववृत्तों के बारे में अंधेरे में रखी गई थी और उसे उस सब का पता तब चला जब वर्षों पश्चात् वह डाक्टर अफगानिस्तान में उसे पीछे छोड़कर भारत वापस लौट गया ।

निःसंदेह ये ही प्रमुख उदाहरण नहीं हैं जहां गैर मुस्लिम व्यक्तियों ने इस्लाम में संपरिवर्तित होने का दावा करते हुए अपनी पहली पत्नियों को धोखा दिया है ; बहुत से ऐसे मामले तो ऐसे है, जिन पर ध्यान ही नहीं जाता है । इस प्रकार उच्चतम न्यायालय द्वारा परिनिर्धारित रूप में विधिक स्थिति को विभिन्न समुदायों के बीच विवाहों को शासित करने वाली सभी विद्यमान विधायी अधिनियमितियों में इस आशय का आवश्यक उपबंध पुरःस्थापित करके पर्याप्त रूप से स्पष्ट किए जाने की आवश्यकता है ।

यह रिपोर्ट भारत में द्विविवाह की विद्यमान स्थिति की परीक्षा करती है और नकली संपरिवर्तन के मार्ग द्वारा द्विविवाह के बारे में सामाजिक घबराहट का निवारण करने के लिए उपायों का सुझाव देती है ।

किसी विशिष्ट मामलें में बहुल विवाह की संख्या और उनमें लिप्त होने वाले व्यक्ति के लिंग पर निर्भर करते हुए, इतिहासकार बहुल विवाहों की विभिन्न स्थितियों के लिए भिन्न अभिव्यक्तियों का प्रयोग करते है- द्विविवाह (किसी पुरुष या स्त्री द्वारा दो विवाह), बहुविवाह (किसी पुरुष या स्त्री द्वारा तीन या अधिक विवाह), बहु पत्नी प्रथा (पुरुष द्वारा द्विविवाह) और बहु पति प्रथा (स्त्रियों द्वारा द्विविवाह) ।

इन सूक्ष्म अंतरों से बचने के लिए और स्पष्टता तथा सुविधा की दृष्टि से, हम इस रिपोर्ट में सामान्य शब्दों 'द्विविवाह' या 'बहुविवाह' का प्रयोग कर रहे हैं, जो एक विवाह के विरोधी हैं और लिंग तथा पतियों -पत्नियों की संख्या का ध्यान रखे बिना बहुल विवाहों के सभी मामलों को लागू होते हैं ।

अध्याय 2

द्विविवाह संबंधी दंड विधि

साधारण रूप में द्विविवाह

भारतीय दंड संहिता, 1860 के अधीन विवाह से संबंधित अपराधों पर अध्याय में द्विविवाह से संबंधित दो उपबंध हैं- इनमें से पहला दूसरे पति-पत्नी से प्रथम विवाह का तथ्य छिपाए बिना पुनः विवाह करने वाले विवाहित व्यक्तियों को लागू होता है, और दूसरा उनको लागू होता है जो दूसरे पति-पत्नी को प्रथम विवाह के बारे में अंधेरे में रख कर ऐसा करते है । संहिता की धारा 494 यथा निम्नलिखित है-

> " जो कोई पति या पत्नी के जीवित होते हुए किसी ऐसी दशा में विवाह करेगा जिसमें ऐसा विवाह इस कारण शून्य है कि वह ऐसे पति या पत्नी के जीवनकाल में होता है, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।
>
> अपवाद-- इस धारा का विस्तार किसी ऐसे व्यक्ति पर नही है, जिसका ऐसे पति या पत्नी के साथ विवाह सक्षम अधिकारिता के न्यायालय द्वारा शून्य घोषित कर दिया गया हो और न किसी ऐसे व्यक्ति पर है, जो पूर्व पति या पत्नी के जीवनकाल में विवाह कर लेता है, यदि ऐसा पति या पत्नी उस पश्चात्वर्ती विवाह के समय ऐसे व्यक्ति से सात वर्ष तक निरन्तर अनुपस्थित रहा हो, और उस काल के भीतर ऐसे व्यक्ति ने यह नहीं सुना हो कि वह जीवित है, परन्तु यह तब जब कि ऐसा पश्चात्वर्ती विवाह करने वाला व्यक्ति उस विवाह के होने से पूर्व उस व्यक्ति को, जिसके साथ ऐसा विवाह होता है, तथ्यों की वास्तविक स्थिति की जानकारी, जहां तक कि उनका ज्ञान उसको हो, दे दे ।"

द्विविवाह के मामलों के बारे में, जहां कोई व्यक्ति दूसरे पति/पत्नी को धोखे में रखकर विवाह करता है, वहां भारतीय दंड संहिता की धारा 495 निम्नलिखित कहती है-

> "जो कोई पूर्ववर्ती अंतिम धारा में परिभाषित अपराध अपने पूर्व विवाह की बात उस व्यक्ति से छिपाकर करेगा जिससे पश्चात्वर्ती विवाह किया जाए, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।"

यह देखा जाएगा कि भारतीय दंड संहिता के इन उपबंधों का लागू होना तभी आकर्षित होगा यदि दूसरा विवाह किसी विशिष्ट मामले के पक्षकारों को अन्यथा लागू विधि के अधीन द्विविवाही होने के कारण शून्य है किन्तु ऐसा अन्यथा नहीं ।

इस प्रकार भारतीय दंड संहिता के द्विविवाह विरोधी उपबंध उन सभी को लागू होते हैं जिनके विवाह निम्नलिखित विधायी अधिनियमितियों में से किसी के द्वारा, जो किसी पुरुष या स्त्री द्वारा दूसरे द्विविवाह को शून्य मानती हैं शासित होते हैं :

i) विशेष विवाह अधिनियम, 1954

ii) विदेशी विवाह अधिनियम, 1969

iii) क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872

iv) पारसी विवाह और विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1936

v) हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955

जहां तक मुस्लिमों का संबंध है द्विविवाह से संबंधित भारतीय दंड संहिता के उपबंध स्त्रियों को लागू होते है-क्योंकि मुस्लिम विधि किसी विवाहित स्त्री द्वारा दूसरे द्विविवाह को शून्य मानती है, किन्तु पुरुष का नहीं क्योंकि पारंपरिक मुस्लिम विधि के अधीन उसे साधारणतया पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि पुरुष बहुल विवाह करने के

लिए स्वतंत्र समझे जाते हैं । इस विश्वास की सत्यता की, निसंदेह, ध्यानपूर्वक संवीक्षा किए जाने की आवश्यकता है ।

भारतीय दंड संहिता के द्विविवाह विरोधी उपबंध जनजाति के पुरुष और स्त्रियों को भी लागू नहीं होगें यदि उनकी रुढ़िगत विधि और पद्धति उनके बहुल विवाहों को शून्य नहीं मानती है । इसकी न्यायिक रूप से पुष्टि की जा चुकी है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 494 अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को तब तक लागू नहीं होगी जब तक कि किसी मामले को लागू जनजाति विधि द्विविवाह को शून्य नहीं मानती है । उदाहरण के लिए देखिए सूरजमणि स्टेला कुजूर (डा0) बनाम दुर्गाचरण हंसदाह ए आइ आर 2001एससी 938

अपराध की प्रकृति

भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अधीन अपराध असंज्ञेय, जमानतीय और न्यायालय की अनुज्ञा से व्यथित पति/पत्नी द्वारा शमनीय हैं । यह कि अपराध पक्षकारों की पारस्परिक सहमति से शमनीय हैं इसकी पुष्टि नरोत्तम सिंह बनाम पंजाब राज्य ए आई आर1978एससी1542 में की गई थी ।

तथापि आंध्र प्रदेश राज्य में 1992 के एक स्थानीय संशोधन द्वारा धारा 494 के अधीन अपराध को संज्ञेय, अजमानतीय और अशमनीय बनाया गया था ।
भारतीय दंड संहिता की धारा 495 के अधीन अपराध असंज्ञेय, जमानतीय और-धारा 494 के अधीन के असमान- अशमनीय है । किन्तु इस पर ध्यान दिया जाए कि आंध्र प्रदेश में यह अपराध भी संज्ञेय और अजमानतीय बनाया गया है ।

भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंध कार्य रूप में

स्त्रियों द्वारा द्विविवाह समाज में बहुत ही अपवादात्मक है किन्तु पुरुषों द्वारा द्विविवाह वास्तव में प्रचलित है । तथापि, चूंकि भारतीय दंड संहिता के द्विविवाह विरोधी उपबंध (आंध्र प्रदेश के सिवाय) असंज्ञेय हैं, अतः द्विविवाह के अपराध के अधिकतर मामले अदंडनीय रह जाते हैं । सभी समुदायों की व्यथित पहली पत्नियां चुपचाप द्विविवाह की पद्धति द्वारा कारित दुखों को सहती हैं ।

समाज में भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के लागू होने से बचने के लिए ऐसी युक्तियों को, जिन्हें 'विधिक' माना जाता है अपनाने का भी प्रचलन है । इनमें से कुछ अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण विवाह समारोहों को करना, गैर वैवाहिकर संभोग और धर्म का झठा परिवर्तन है ।

आंध्र प्रदेश के एकमात्र अपवाद के साथ कहीं भी भारतीय दंड संहिता के उपबंधों में या संबंधित प्रक्रिया संबंधी विधि में परिवर्तनों के बारे में अभी तक विचार नहीं किया गया है जिससे कि उक्त उपबंधों के कार्यकरण में सुधार किया सके ।

अध्याय 3

सिविल विवाह विधियों के अधीन द्विविवाह

विशेष विवाह अधिनियम, 1954

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अधीन एक विवाह नियम है । अधिनियम में किसी सिविल विवाह के अनुष्ठापन के लिए बताई गई शर्तों में प्रथम यह है कि "किसी पक्षकार का पति/पत्नी जीवित नहीं हैं" - धारा 4(क) ।

द्विविवाह के संबंध में इस अधिनियम के अधीन दो भिन्न दांडिक उपबंध हैं । यदि कोई व्यक्ति जो पहले से ही विवाहित है, चाहे किसी भी विधि के अधीन, कपटपूर्वक सिविल विवाह करता है तो अधिनियम की धारा 43 के उपबंध, जिन्हें नीचे दिया गया है, लागू होंगे :

> "अध्याय 3 में अन्यथा उपबंधित के सिवाय, प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के बारे में, जो उस समय विवाहित होने पर भी इस अधिनियम के अधीन अपना विवाह अनुष्ठापित कराएगा, यह समझा जाएगा कि उसने भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की, यथास्थिति, धारा 494 या धारा 495 के अधीन अपराध किया है, और ऐसे अनुष्ठापित विवाह शून्य होगा ।"

अधिनियम का अध्याय 3, जो नीचे दी गई धारा 43 में निर्दिष्ट किया गया है, धार्मिक या रुढ़िगत कृत्यों के अनुसार अनुष्ठापित पूर्व-विद्यमान विवाह को इस अधिनियम के अधीन रजिस्टर करके सिविल विवाह में परिवर्तित करने के लिए सुविधा का उपबंध करता है । यह सुविधा इस शर्त के अधीन रहते हुए भी उपलब्ध है कि "किसी पक्षकार का एक से अधिक पति या पत्नी रजिस्ट्रीकरण के समय जीवित नहीं हैं ।"-धारा 15ख ।

यदि कोई व्यक्ति जिसकी, एक से अधिक पत्नियां या पति जीवित हैं, कपटपूर्वक इस अधिनियम के अधीन अपने किसी विवाह को रजिस्टर कराता है तो वह अधिनियम की धारा 45 के अधीन दंडनीय जानबूझकर झूठा कथन करने के अपराध का दोषी होगा ।

विशेष विवाह अधिनियम के द्विविवाह विरोधी उपबंध पक्षकारों के धर्म का ध्यान रखे बिना उसके उपबंधों के अधीन किए गए प्रत्येक विवाह को लागू होते हैं । एक न्यायालय ने विनिदिष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि यदि कोई मुसलमान अपनी स्वीय विधि के बजाय विशेष विवाह अधिनियम के अधीन सिविल विवाह करता है तो इस अधिनियम के द्विविवाह-विरोधी उपबंध उसको लागू होंगे । देखिए एस राधिका शमीना बनाम एसएचओ, हबीब नगर पुलिस स्टेशन, हैदराबाद, 1997 क्रिमी एल जे 1655 (आंध्र प्रदेश)

तथापि यदि कोई व्यक्ति, जिसने धारा 15 के अनुसार विशेष विवाह अधिनियम के अधीन अपने पूर्व विद्यमान विवाह को रजिस्टर कराया है, दूसरा द्विविवाह करता है, तो अधिनियम की भाषा से यह स्पष्ट नहीं है कि ऊपर दी गई धारा 44 का उपबंध इस मामले में लागू होगा या नहीं । धारा 43 में "अध्याय 3 में अन्यथा उपबंधित के सिवाय" शब्द अपने अर्थ में स्पष्ट नहीं हैं । मामलों की उपयुक्तता में चूंकि किसी धार्मिक या रुढ़िगत विवाह का भूतलक्षी प्रभाव से रजिस्ट्रीकरण उसे सभी प्रयोजनों के लिए सिविल विवाह में परिवर्तित कर देता है, अतः अधिनियम के द्विविवाह विरोधी उपबंध ऐसे मामले को भी लागू होने चाहिए ।

विदेशीय विवाह अधिनियम, 1969

यह अधिनियम दो भारतीयों या एक भारतीय और एक विदेशी के बीच विदेशों में हुए सिविल विवाहों के अनुष्ठापन को सरल बनाता है । इस अधिनियम के अधीन भी

एक विवाह नियम है, इसके उपबंधों के अधीन विवाह के अनुष्ठापन के लिए पहली शर्त यह है कि "किसी पक्षकार का पति या पत्नी जीवित नहीं है"- धारा 4(क) ।

यदि एक विवाह की शर्त और अधिनियम की धारा 4 में उल्लिखित अन्य शर्तें पूरी हो जाती हैं तो किसी स्थानीय विधि के अधीन किसी विदेश में अनुष्ठापित दो भारतीयों या एक भारतीय और एक विदेशी के बीच पूर्व विद्यमान विवाह विदेशीय विवाह अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया जा सकता है, जिसके पश्चात् यह समझा जाएगा कि वह उक्त - धारा 17 अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित किया गया है ।

विदेशीय विवाह अधिनियम की धारा 19 के द्विविवाह विरोधी दांडिक उपबंध, जिन्हें नीचे दिया गया है, अधिनियम के अधीन मूल रूप से अनुष्ठापित और विदेशी विधि के अनुसार अनुष्ठापित किन्तु पश्चात्वर्ती विदेशीय विवाह अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत दोनों विवाहों को लागू होते हैं :

> " (1) कोई व्यक्ति, जिसका विवाह इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित किया गया हो या अनुष्ठापित समझा जाए और जो अपने विवाह के बने रहने के दौरान भारत में कोई अन्य विवाह करे, भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 494 और धारा 495 में उपबंधित शास्तियों का भागी होगा तथा इस प्रकार किया गया विवाह शून्य होगा ।
>
> (2) उपधारा (1) के उपबंध भारत से बाहर और परे भारत के किसी नागरिक द्वारा किए गए ऐसे अपराध को भी लागू होते हैं ।

विदेशीय विवाह अधिनियम के द्विविवाह-विरोधी उपबंध, विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के उपबंधों के समान ही, पक्षकारों के धर्म का ध्यान रखे बिना, उसके द्वारा शासित सभी मामलों में लागू हैं ।

धर्म के परिवर्तन का प्रभाव

सिविल विवाहों के किसी पक्षकार द्वारा विवाह के पश्चात् संपरिवर्तन का कोई विधिक परिणाम नहीं हैं - संपरिवर्तक, यथास्थिति, विशेष विवाह अधिनियम, 1954 या विदेशीय विवाह अधिनियम, 1969 के उपबंधों का ही विषय बना रहता है और न तो संपरिवर्तन करने वाला पति यापत्नी दूसरा विवाह कर सकते हैं और न दूसरा पति या पत्नी धर्म के परिवर्तन के आधार पर विवाह विच्छेद की मांग कर सकते हैं ।

यदि किसी ऐसी स्थिति में कोई पक्षकार धर्म परिवर्तन करने के पश्चात् पुनः विवाह करता है किन्तु ऐसा वह विवाह विच्छेद या अकृतता की डिक्री प्राप्त किए बिना करता है तो उसका आचरण फिर भी भारतीय दंड संहिता के द्विविवाह-विरोधी उपबंधों को आकर्षित करेगा ।

अध्याय 4

समुदाय विनिर्दिष्ट विधान के अधीन द्विविवाह

क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872

जैसा कि सुविज्ञात है क्रिश्चियन धर्म द्विविवाह का प्रतिषेघ करता है । भारत में क्रिश्चियन विवाह ब्रिटिश अवधि के पुराने अधिनियम- क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872- द्वारा शासित होते हैं । यह भारत के क्रिश्चियनों में सभी प्रकार के विवाहों को लागू होता है और यह उनसे अपने उपबंधों के अधीन अनुष्ठापित किए जाने की अपेक्षा करता है न केवल उस दशा में जब दोनों पक्षकार क्रिश्चियन हैं किन्तु उस दशा में भी जब उनमें से एक क्रिश्चियन है और दूसरा गैर-क्रिश्चियन है (देखिए अधिनियम की धारा 4)

इस अधिनियम के अधीन विवाह या तो किसी चर्च के 'मिनिस्टर आफ रिलीजन (धर्म कर्म कराने वाला)' के द्वारा या विवाह रजिस्ट्रार द्वारा या उसकी उपस्थिति में अनुष्ठापित किया जा सकता है ।

पहले मामले में किसी पक्षकार द्वारा विवाह के लिए दी गई सूचना के साथ विवाह के समय पक्षकारों की वैवाहिक स्थिति की घोषणा होनी चाहिए और इस प्रयोजन के लिए विहित प्ररूप केवल दो संभावनाओं का उल्लेख करता है - सूचना देने वाला व्यक्ति या तो कोई अविवाहित या अविवाहिता अथवा विधुर/विधवा हो सकती है । सूचना की अपेक्षा के अनुपालन का प्रमाणपत्र आवेदक द्वारा इसकी पुष्टि करने वाली घोषणा के फाइल किए जाने पर जारी किया जाना होता है कि "वह विश्वास करता है कि....." किसी विवाह रजिस्ट्रार द्वारा या उसकी उपस्थिति में अनुष्ठापित किसी विवाह के मामले में कोई प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए, लिखी हुई घोषणा फाइल करने के

स्थान पर सूचना देने वाले व्यक्ति को उसी आशय की शपथ लेनी होती है कि वह "वह विश्वास करता है कि....."

यह अधिनियम उपबंध करता है कि झूठी शपथ लेने वाला या घोषणा करने वाला या झूठी सूचना पर हस्ताक्षर करने वाला कि कोई व्यक्ति साशय

इस अधिनियम में भारतीय दंड संहिता की धारा 494 और धारा 495 में अंतर्विष्ट द्विविवाह-विरोधी उपबंधों के लिए कोई विनिर्दिष्ट निर्देश नहीं हैं । चूंकि द्विविवाह क्रिश्चियन धार्मिक विधि द्वारा कठोर रूप से प्रतिषिद्ध है और अधिनियम भी इसका विवक्षित रूप से प्रतिषेध करता है, अतः भारतीय दंड संहिता के उक्त उपबंधों का विवाहित क्रिश्चियनों को लागू होना पूर्वनिश्चित निष्कर्ष के रूप में देखा जा सकता है । तथापि इस मुद्दे पर अधिनियम को विनिर्दिष्ट बनाने के लिए एक मामला है ।

किसी पति/पत्नी द्वारा धर्म का विवाह पश्चात् परिवर्तन क्रिश्चियन विधि के अधीन द्विविवाह के प्रतिषेध पर कोई प्रभाव नहीं रखता है क्योंकि क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872 और उसके विवाह विच्छेद अनुपूरक, भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 भी उन मामलों में लागू होते हैं जहां केवल पति या पत्नी क्रिश्चियन है ।

पारसी विवाह और विवाह विच्छेद अधिनियम, 1936

क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872 के असमान, पारसी विवाह और विवाह विच्छेद अधिनियम, 1936 विनिर्दिष्ट रूप से द्विविवाह का प्रतिषेध करता है और कहता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 494 और धारा 495 उस अधिनियम द्वारा शासित किसी भी विवाह से संबंधित द्विविवाह के प्रत्येक मामले में आकर्षित होंगी । अधिनियम की धारा 4 और धारा 5 यथा अभिलिखित हैं -

4. " (1) कोई भी पारसी (चाहे ऐसे पारसी ने अपना धर्म या अधिवास बदला हो या नहीं) उसने पति या अपनी पत्नी के जीवनकाल में चाहे वह पारसी हो या नहीं, इस अधिनियम या किसी अन्य विधि के अधीन विवाह तब तक नहीं करेगा जब तक कि उसने अपनी पत्नी या अपने पति से विधिपूर्ण विवाह-विच्छेद प्राप्त नहीं किया है या ऐसी पत्नी के साथ या ऐसे पति के साथ उसका विवाह विधिपूर्ण रीति से अकृत और शून्य घोषित नहीं किया गया है या विघटित नहीं किया गया है और यदि ऐसी पत्नी या ऐसे पति के साथ या इस अधिनियम के अधीन विवाह किया गया था, तो इन दोनों अधिनियमों में से किसी एक के अधीन पूर्वोक्त विवाह-विच्छेद, घोषणा या विघटन नहीं हो गया है ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों के प्रतिकूल किया गया प्रत्येक विवाह शून्य होगा ।"

5. "प्रत्येक पारसी जो अपनी पत्नी या अपने पति के जीवनकाल में, चाहे वह पारसी हो या नहीं, ऐसी पत्नी या ऐसे पति से, विधिपूर्ण विवाह-विच्छेद प्राप्त किए बिना या ऐसी पत्नी या ऐसे पति से उसका विवाह विधिपूर्ण रीति से अकृत और शून्य घोषित हुए बिना या विघटित हुए बिना, विवाह करेगा, तो वह ऐसे पति या ऐसी पत्नी के जीवनकाल के दौरान पुनर्विवाह करने के अपराध के लिए भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 494 तथा धारा 495 में उपबंधित शास्तियों से दंडनीय होगा ।"

धर्म के परिवर्तन के पश्चात् द्विविवाह और उसके प्रतिषेध के प्रतिनिर्देश पारसी विवाह और विवाह विच्छेद अधिनियम, 1936 का अद्वितीय लक्षण है, जो तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कुंटुंब विधि अधिनियमिति के अधीन कोई साम्यता नहीं रखता है ।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955

बहुत प्राचीन समय से यह विश्वास किया जाता था- सही या गलत- कि हिन्दू धर्म अनियंत्रित बहुल विवाह की अनुज्ञा देता था और उसने बहुल विवाही - पति पर कोई विनिर्दिष्ट शर्त अधिरोपित नहीं की थी । भारत के मुस्लिम शासकों ने बहुल विवाह पर हिन्दू विधि को- जो भी वह थी- अनछुआ छोड़ दिया और उसने किसी गैर-मुस्लिम पर सहपत्नियों के प्रति समान न्याय के सुपरिभाषित अनुशासन में सीमित बहुल विवाह को सहन करने वाली मुस्लिम विधि के नियमों को अधिरोपित नहीं किया । ब्रिटिश शासको ने भी, जिन्होंने हिन्दू विधि के बहुत से अन्य पहुलओं में सुधार किए, रुढ़िगत हिन्दू विधि और रीति-रिवाजों के अधीन बहुल विवाह संबंधी नियमों का उत्सादन नहीं किया । केवल ब्रह्मसमाजियों ने पूर्ववर्ती बंगाल प्रांत में 1872 में उनके लिए अधिनियमित एक विशेष विधि के अधीन एक विवाह को वैध रूप से स्वीकार करने की व्यवस्था कर ली थी ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् मुम्बई, मद्रास, सौराष्ट्र और केन्द्रीय प्रांतों में प्रांतीय विधान मंडलों द्वारा हिन्दुओं के लिए द्विविवाह-विरोधी विधियां अधिनियमित की गई थीं । अंतिम रूप से 1955 में संसद् ने हिन्दुओं, बौद्धों, जैनों और सिखों के लिए द्विविवाह पर सब पर लागू होने वाली रोक लगाते हुए हिन्दू विवाह अधिनियम अधिनियमित किया था, जिसमें द्विविवाहों को उनके भाग पर भविष्य में शून्य और दांडिक घोषित किया था (देखिए धारा 5, 11 और 17)।

हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन विधिमान्य विवाह के लिए शर्तों में से एक यह है कि "किसी पक्षकार का पति या पत्नी विवाह के समय जीवित नहीं हैं' (धारा 5 (i) । इस शर्त का अतिक्रमण विवाह को अकृत और शून्य बना देगा और वह किसी पक्षकार

द्वारा दूसरे पक्षकार के विरुद्ध फाइल की गई किसी याचिका पर अकृतता की डिक्री द्वारा ऐसा घोषित किए जाने का दायी होगा । (धारा 11)

हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 17 एक बार पुनः अधिनियम द्वारा शासित व्यक्तियों के बीच प्रत्येक द्विविवाह को शून्य घोषित करती है और उसे भारतीय दंड संहिता, 1860 के द्विविवाह-विरोधी उपबंधों के अधीन दंडनीय बनाती है यह निम्नलिखित है--

> "यदि इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् दो हिन्दुओं के बीच अनुष्ठापित किसी विवाह की तारीख पर ऐसे विवाह के किसी पक्षकार का पति या पत्नी जीवित था या थी तो ऐसा विवाह शून्य होगा और भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 494 और धारा 495 के उपबंध उसे तदनुसार लागू होंगे ।"

यद्यपि धारा 7(2) कहती है कि यदि कोई विवाह सप्तपदी कर्म द्वारा अनुष्ठापित किया जाता है तो विवाह पूर्ण होगा और सातवां कदम उठाने पर आबद्धकर होगा, कुछ उच्च न्यायालयों ने यह दृष्टिकोण अपनाया है कि यह साक्ष्य का विशेष नियम नहीं है जो द्विविवाह के मामले में सातवां कदम सम्यक् रूप से लिए जाने के सबूत की अपेक्षा करता है- पादुल्लापथ मुताइला बनाम सुब्बालक्ष्मी एआईआर 1962एपी 311, त्रैलोक्य मोहन बनाम राज्य एआईआर 1968 असम 22 ।

1988 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश राधाकृष्ण राव ने सावधानी का एक महत्वपूर्ण नोट जारी किया था :

> "प्रथम विवाह के अस्तित्व में रहने के दौरान दूसरा विवाह साधारणतया गुप्त रूप से किया जाएगा यह बिल्कुल व्यर्थ है कि सीधे परिसाक्ष्य की आशा की जाए । कुछ मामलों में पुरोहित को भी जिसने विवाह निष्पादित किया दुष्प्रेरक माना

जाएगा । न्यायालय इस आधार पर अभिमुक्ति दे रहे हैं कि दूसरे विवाह के लिए अपेक्षित कर्म युक्तियुक्त संदेह से परे साबित नहीं किए गए हैं । दूसरे विवाह के सबूत के तरीके के संबंध में यथोचित विधान बनाया जाना है । यदि वह विवाह एक और सब की जानकारी में सार्वजनिक रूप से और खुले रूप से किया गया था तो न्यायालय सीधे साक्ष्य की आशा कर सकता है । जब दूसरा विवाह गुप्त रूप से संपन्न किया जा रहा है तो यह अच्छी तरह जानते हुए कि यह एक अपराध है, यदि न्यायालय कठोरतः सबूत पर जोर देते हैं तो यह शपथ पर मिथ्या साक्ष्य देने को प्रोत्साहित करने के बराबर होगा । न्यायालय का उद्देश्य शपथ पर मिथ्या साक्ष्य देने पर प्रोत्साहित करना नहीं है किन्तु वास्तवित सच्चाई का पता लगाना और यदि दूसरा विवाह हुआ है तो अभियुक्त को सिद्धदोष ठहराना है । दुर्भाग्य से ऐसे सामाजिक संगठनों में से किसी ने भी, जो स्त्रियों के अधिकारों के संरक्षण का दावा करते हैं, यह देखने के लिए कदम नहीं उठाए हैं कि दूसरे विवाह के निष्पादन के सबूत के तरीके के संबंध में उपयुक्त विधान बनाया जाए ।"- (1988 क्रिमी. एल जे 1848)

तथापि अधिनियम के द्विविवाह-विरोधी उपबंधों को अधिनियम की धारा 7(2) के अधीन विवाह-कर्म संबंधी अनुष्ठापन की अपेक्षा के साथ जोड़ने के बारे ने उच्चतम न्यायालय में पश्चात्वर्ती यह अभिनिर्धारित किया कि यदि कोई रुढ़िगत कर्म (पुनःविवाह करने के लिए) अपूर्ण रूप से या त्रुटिपूर्ण रूप से किया जाता है, तो पारिणामिक दूसरा विवाह विधि की दृष्टि में अस्तित्वहीन होगा और इसलिए अधिनियम के द्विविवाह-विरोधी उपबंधों को या दंड प्रक्रिया संहिता को आकर्षित नहीं करेगा । देखिए भौराव बनाम महाराष्ट्र राज्य एआईआर1965एससी1954

इस निर्वचन को मानते हुए, यदि सप्तपदी कर्म धारा 7(2) के नियम की दृष्टि से अपूर्ण रूप से किया गया है तो दूसरे अभिकथित रूप से द्विविवाह को विद्यमान न होने के रूप में मानने के लिए और अधिक कारण हैं ।

यदि हिन्दू विवाह अधिनियम के द्विविवाह-विरोधी उपबंधों को कठोरतः प्रवर्तित किया जाना है तो उन्हें अधिनियम की धारा 7 के उपबंधों से, जिसके अधीन कुछ कर्म विवाह के अनुष्ठापन के लिए आवश्यक रूप से किए जाने होते हैं, अलग करने के लिए मामला बनता है ।

धर्म के परिवर्तन का प्रभाव

हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन किसी पक्षकार द्वारा विवाह पूर्व धर्म का परिवर्तन दूसरे संपरिवर्तित न होने वाले पति/पत्नी के हाथ में विवाह -विच्छेद के लिए एक आधार है [धारा 13(1)(ii)] इस अनुतोष को प्राप्त किए बिना संपरिवर्तित न होने वाला पति/पत्नी पुनः विवाह नहीं कर सकता है ।

संपरिवर्तन करने वाले पति/पत्नी के बारे में, अधिनियम इस संबंध मं कुछ नहीं कहता है कि उसका द्विविवाह-विरोधी उपबंध या उस मामले में कोई अन्य उपबंध उसको लागू रहेगा या नहीं । इस मुद्दे पर स्पष्ट कानूनी उपबंध की अनुपस्थिति में यह सदैव विवादास्पद मुद्दा रहा है कि इस अधिनियम द्वारा शासित कोई विवाहित व्यक्ति इस्लाम में अपने संपरिवर्तन पर दूसरा द्विविवाह कर सकता है या नहीं जो, साधारणतया विश्वास किया जाता है कि मुस्लिम विधि के अधीन अनुज्ञेय है ।

हिन्दूओं, बौद्धों, जैनों और सिखों के लिए द्विविवाह की अपवादात्मक समाप्ति ने इन समुदायों के बीच उन विवाहित व्यक्तियों के लिए गंभीर समस्याओं का सृजन कर दिया है जो एक या दूसरे कारण से, न्यायपूर्ण या अन्यायपूर्ण, पुनः विवाह करना चाहते हैं । नई विधि चाहती है कि वे पहले विद्यमान विवाह को विधिक रूप से विघटित करे । यह सरल नहीं है । हिन्दू विवाह अधिनियम विवाहों के विघटन के लिए अनुज्ञा देता है किन्तु अधिनियम के अधीन अधिकारिता दिए गए साधारण सिविल न्यायालयों में जटिल

न्यायिक प्रक्रिया ने विवाह विच्छेद कार्यवाहियों को तंग करने वाले और लंबे संघर्ष में बदल दिया है । टूटे हुए विवाहों के वास्तविक मामले हैं, और ऐसे भी मामले हैं जिनमें व्यक्ति बेईमानी से अपनी पहली पत्नियों को निकाल देना चाहते हैं और नए भागीदार बनाना चाहते हैं - निःसंदेह पूववर्ती मामले बाद वालों से अधिक हैं । ऐसे विवाहित व्यक्ति जो पुनः विवाह करना चाहते हैं उनके लिए कोई धार्मिक अवरोध नहीं है चूंकि वे विश्वास करते हैं कि उनका धर्म उनकी अपनी इच्छा पूरी करने की अनुज्ञा देता है और वे द्विविवाह पर, उसके लिए किसी धार्मिक सहमति के बिना, नई अधिरोपित की गई विधिक रोक का अतिक्रमण करने में बुरा नहीं समझते हैं । तथापि, नई विधि द्वारा द्विविवाह करने वालों पर अधिरोपित की जाने वाली शास्तियों से बचने के लिए, उनको एक 'युक्ति' की आवश्यकता होती है और ऐसे व्यक्तियों द्वारा, जो हमेशा विधि तोड़ने वालों की सहायता करने के लिए तैयार रहते हैं, विभिन्न 'युक्तियों' का सुझाव दिया जाता है- इन युक्तियों में से सबसे पहली इस्लाम में झूठा संपरिवर्तन है ।

हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन एक विवाह की विधि निःसंदेह गंभीर कमियों और त्रुटियों से भरी हुई है । विवाह अनुष्ठानों से संबंधित अधिनियम के उपबंधों के साथ, यह उसके अतिक्रमण के सभी परिणामों से सरलता पूर्वक बचने के लिए अंतःनिर्मित युक्तियों का उपबंध करता है ।

अध्याय 5

मुस्लिम स्वीय विधि के अधीन द्विविवाह

पारंपरिक विधि

साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि मुस्लिम विधि के अधीन किसी पति को दोबारा विवाह करने का, जहां उसका पूर्ववर्ती विवाह अस्तित्व में भी हो तो भी, अनियंत्रित अधिकार है । कुरान और इस्लामी विधि के अन्य श्रोतों के सुसंगत उपबंधों की नजदीक से परीक्षा करने पर, यह सत्य नहीं प्रतीत होता है । मुस्लिम विधि का नियम सशर्त द्विविवाह की अनुज्ञा देते हुए वास्तव में एक साझे पति के साथ सुख पूर्वक रहने वाली दो या अधिक पत्नियों की कल्पना करता है- इस्लाम की द्विविवाह की संकल्पना में दूसरी पत्नी को पहली का त्याग या परित्याग करने के पश्चात् लेने की नहीं है ।

किसी निर्बंधन या अनुशासन के बिना, कोई भी हो, द्विविवाह वहां समाज में प्रचलित था जहां इस्लाम पहली बार अस्तित्व में आया और ऐसा विश्व के बहुत से अन्य समाजों में भी था । पवित्र कुरान, सीमाओं के अंदर इसकी अनुज्ञा देते हुए और उन सीमाओं के अन्दर भी इसे कठोर अनुशासन के अधीन करते हुए, इस पर निर्बंधन अधिरोपित करता है । कुरान ने बहुल विवाह की इस कठोर शर्त के अधीन रहते हुए अनुज्ञा दी कि पुरुष को सभी प्रकार से दो पत्नियों के साथ समान व्यवहार सुनिश्चित करने के योग्य होना चाहिए । इस बात पर जोर देते हुए कि यदि ऐसा करना सर्वोत्तम आशय रखते हुए भी संभव नहीं हो सकता है तो पवित्र पुस्तक में उसी समय मनुष्य को एक विवाह करने के लिए सलाह देती है क्योंकि "ऐसा करना तुमको अन्याय से दूर रखेगा" (कुरान (iv) : 3 और 129) कुरान के इस सुधार के साथ पैगम्बर ने बहुत अधिक कठोर चेतावनी जोड़ दी : "अपनी पत्नियों के साथ समान रूप से व्यवहार करने में असमर्थ किसी द्विविवाह करने वाले को निर्णय के दिन अलग-अलग टुकड़ों में बांट दिया जाएगा" । यह सुधार था जिसे इस्लामिक धर्म विधि सातवीं शताब्दी । एडी में प्रारंभ कर सकी थी और किया था।

यदि द्विविवाह का अर्थ अपनी पहली पत्नी को उससे विवाह विच्छेद के बिना उसे त्यागना और नई पत्नी को लाना था तो कुरान निश्चित रूप से इसकी अनुज्ञा नहीं देता है । मुस्लिम विधि में द्विविवाह दो स्त्रियों की एक पति के साथ सुखपूर्वक विवाहित होते हुए और उसके साथ वास्तव में रहते हुए और उससे वह सब कुछ समान रूप से, जिसकी एक पत्नी अपने पति से आशा कर सकती है, पाते हुए रहने की कल्पना करता है । जहां यह संभव नहीं है वहां कुरान पति पर एक पत्नीक रहने के लिए जोर डालता है । उस प्रकार के द्विविवाह का, जो अब भारत में प्रचलित है, जिसमें प्रथम पत्नी का पूर्ण रूप से त्याग कर दिया जाता है और जिससे उसे यंत्रणा सहनी पड़ती है और दूसरी पत्नी को पति के घर में उसका स्थान लेने की अनुज्ञा दी जाती है, इस्लामी विधिक पाठों में कहीं भी अनुमोदन नहीं किया जाता है ।

मुस्लिम विधि के बारे में - जैसी वह भारत में पारंपरिक रूप से समझी जाती, निवर्चित की जाती और लागू की जाती है- यह विश्वास किया जाता है कि वह चार विवाहों की, एक-दूसरे के बने रहने के दौरान, अनुज्ञा देती है । यद्यपि सहपत्नियों के बीच न्याय करने की सामर्थ्य विधि में द्विविवाह के लिए पूर्ववर्ती शर्त है, किन्तु किसी पुरुष में ऐसी सामर्थ्य है या नहीं, यह अस्पष्ट कारणों से उसके वास्तव में द्विविवाह करने के पूर्व न्यायालय के विचार योग्य नहीं है । मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम,1939 सह पत्नियों के बीच असमान व्यवहार को व्यथित पत्नी को विवाह विच्छेद के लिए उपलब्ध आधार के रूप में मानता है ; किन्तु ऐसी कोई विधि नहीं है जिसके अधीन किसी व्यक्ति के दूसरा विवाह करने के अधिकार और उसके सामर्थ्य की उसके ऐसा कार्य करने के पूर्व किसी के द्वारा परीक्षा की जा सके ।

मुस्लिम विधि के नियम स्त्रियों को अपने होने वाले पतियों की द्विविवाह करने की स्वतंत्रता को, अपनी विवाह संविदा में इस आशय की शर्त रखवाकर, निर्बंधित करने के लिए सशक्त करते हैं और चूंकि मुस्लिम विधि पुरुष और स्त्री दोनों की प्रेरणा पर न्यायालय के बाहर विवाह विच्छेद की अनुज्ञा देती है, अतः आगे वह उपबंध करती है कि

कोई स्त्री, जो अपने पति से मुक्ति पाने की विधिक रूप से दी गई सुविधा का उपभोग करने के पश्चात् पुनः विवाह करती है, तो वह द्विविवाह के आरोप का सामना नहीं करेगी । मुस्लिम विधि के इन स्त्री-समर्थक के पक्ष के उपबंधों को कई मामलों में भारत में न्यायिक रूप से मान्यता दी गई है ।

सामाजिक और न्यायिक प्रवृत्तियां

द्विविवाह को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया है या गंभीर रूप से संसार के अधिकांश मुस्लिम देशों में विधि द्वारा नियंत्रित किया गया है । टर्की और ट्यूनीशिया ने इसे पूर्ण रूप से विधि बाह्य कर दिया है । जबकि इजिप्ट, सीरिया, जोर्डन, ईराक, यमन, मोरक्को, पाकिस्तान और बंगलादेश में इसे प्रशासनिक या न्यायिक नियंत्रण के अधीन रखा गया है । (इन सुधारों के ब्यौरे ताहिर महमूद की पुस्तक इस्लामी देशों में स्वीय विधि के कानून, दूसरा संस्करण, 1995 में देखे जा सकते है)

भारत में द्विविवाह मुसलमानों के बीच बहुत सामान्य नहीं है और एक ही समय पर एक पत्नी से अधिक रखने वाले पुरुषों के मामले कम और यदाकदा हैं । भारत का मुस्लिम समाज साधारणतया वास्तव में बहुल विवाह को अननुमोदन के साथ देखता है और किसी द्विविवाह करने वाले को साधारणतया उसके कुटुंब में और उसके बाहर नीची दृष्टि से देखा जाता है । इसके बावजूद दुर्भाग्य से धार्मिक नेता इस संबंध में कोई विधायी सुधार करने के लिए तैयार नहीं हैं और धार्मिक संवेदनशीलताओं ने राज्य को इस संबंध में कोई सुधार करने की कभी अनुज्ञा नहीं दी है ।

भारत में न्यायालय भी द्विविवाह को बहुत नीची दृष्टि से देखते हैं और द्विविवाह करने वाले पतियों की पहली पत्नियों को सभी प्रकार का अनुतोष देते हैं । कई उच्च न्यायालयों ने अभिनिर्धारित किया है कि द्विविवाह क्रूरता के बराबर है जिसका पहली पत्नी के विरुद्ध विवाह संबंधी अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए पुरुष के वाद के उत्तर

के रूप में अभिवचन किया जा सकता है - देखिए इतवारी बनाम असगरी एआईआर 1960, इलाहाबाद 684, राज मोहम्मद बनाम सईदा अमीना बेगम एआईआर 1976, केन्ट 200, सहीना परवीन बनाम मुहम्मद शकील, एआईआर 1987, देहली 210 ।

भारत के उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 का उपबंध, जो पति की क्रूरता के आधार पर किसी पत्नी को पृथक भरण पोषण की अनुज्ञा देता है, उन मुस्लिम स्त्रियों को लागू होता है, जिनके पति दूसरा द्विविवाह करते हैं । देखिए खातून बनाम यामीन एआईआर 1982 एससी 853 ।

दूसरे मामले में उच्चतम न्यायालय ने द्विविवाह की पद्धति की गंभीर रूप से आलोचना की है और कहा है कि दूसरी पत्नी और उप पत्नी में कोई अंतर नहीं है । देखिए बेगम सु भानू बनाम अब्दुल गफ्फूर एआईआर 1987 एससी 1103 ।

प्रशासनिक सेवा नियम

केन्द्रीय सिविल सेवा (आचरण) नियम, 1964 उपबंध करते हैं कि कोई व्यक्ति जिसने द्विविवाह किया है या जिसने किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह किया है जिसका पति/पत्नी जीवित है, ऐसी सेवाओं में नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगा - नियम 21 । अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम, 1968 समान निर्बंधन उन पर, जो पहले से ऐसी किसी सेवा के सदस्य हैं, लगाते हैं - नियम 19 । तथापि दोनों नियम सरकार को इन निर्बधनों को लागू करने से छूट देने के लिए सशक्त करते हैं यदि लागू स्वीय विधि वांछनीय विवाह की अनुज्ञा देती हैं और "ऐसा करने के लिए अन्य आधार हैं ।"

सेवा नियमों के ये उपबंध मुसलमानों को लागू होते हैं और उनकी संवैधानिक विधिमान्यता केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और न्यायालयों द्वारा बनाए रखी गई है ।

देखिए अर्थात खैजर बाशा बनाम इंडियन एयर लाइंस कारपोरेशन, नई दिल्ली एआईआर 1984 मद्रास 379 (जो वायु निगम अधिनियम, 1953 के अधीन बनाए गए विनियमों में के समरूप उपबंध से संबंधित है)

धर्म के परिवर्तन का प्रभाव

पारंपरिक मुस्लिम विधि के अधीन यदि कोई विवाहित मुस्लिम स्त्री दूसरे धर्म में संपरिवर्तित हो जाती है तो उसका विवाह स्वतः विघटित हो जाएगा । तथापि यह नियम भारत में लागू नहीं हैं । मुस्लिम विवाह का विघटन अधिनियम, 1939 उपबंध करता है कि किसी मुस्लिम पत्नी द्वारा धर्म परित्याग उसके विवाह को विघटित नहीं करेगा (धारा 4) । इसलिए यद्यपि 1939 का अधिनियम विनिर्दिष्ट रूप से ऐसा नहीं कहता है तथापि यदि कोई विवाहित मुस्लिम स्त्री इस्लाम का परित्याग कर देती है और यह विश्वास करते हुए कि उसका पहला विवाह स्वतः विघटित हो गया है पुनः विवाह करती है तो उसका दूसरा विवाह भारतीय दंड संहिता की धारा 494 और धारा 495 का लागू होना आकर्षित करेगा ।

मुस्लिम विवाह का विघटन अधिनियम, 1939 के अधीन इस नियम का अपवाद है - यदि कोई विवाहित संपरिवर्तक मुस्लिम स्त्री इस्लाम का परित्याग कर अपने मूल धर्म में प्रत्यावर्तित हो जाती है तो धारा 4 के उपबंध लागू नहीं होंगे । दूसरे शब्दों में इस मामले में उसका पुनः संपरिवर्तन स्वतः उसके मुस्लिम पति के साथ उसके विवाह को विघटित कर देगा । अतः ऐसे किसी मामले में भारतीय दंड संहिता के द्विविवाह विरोधी उपबंध लागू नहीं होंगे । अपवादात्मक उपबंध स्पष्ट रूप से विभेदक प्रतीत होते हैं ।

अध्याय 6

इस्लाम धर्म अपनाने पर गैर मुस्लिमों द्वारा द्विविवाह

संपरिवर्तन द्वारा द्विविवाह अर्थात् किसी विवाहित गैर मुस्लिम व्यक्ति द्वारा इस्लाम में संपरिवर्तन के पश्चात् दूसरा विवाह- भारत में सामान्य पद्धति है । इसका सहारा लेने वाले व्यक्तियों को वास्तविक इस्लामिक विधि से अज्ञात वकीलों द्वारा यह विश्वास दिलाया जाता है कि मुसलमान हो जाने पर वे अपनी पूर्व वैवाहिक स्थिति का ध्यान रखे बिना पुनः स्वतंत्र रूप से विवाह करने के लिए विधिक रूप से हकदार हो जाएंगे । यह गलत विश्वास द्विविवाह पर इस्लामी विधि का वास्तविक रूप से विरोध करता है । यदि किसी ऐसे मामले में संपरिवर्तन शर्मनाक है- जैसा अधिकांश मामलों में होता है- तो दूसरा विवाह इस्लामिक विधि में कपट होगा औरउसमें उसे कोई मान्यता प्राप्त नहीं हो सकेगी । है यदि संपरिवर्तन वास्तविक है तो दूसरा विवाह सह पत्नियों के साथ समान व्यवहार की रोक के अधीन रहते हुए अनुज्ञात किया जा सकता है, जो स्पष्ट रूप से किसी ऐसे मामले में असंभव होगा । अतः किसी भी मामले में दूसरा विवाह इस्लाम धर्म और विधि के विरुद्ध होगा ।

द्विविवाह के लिए विकल्प का चयन करने वाले इस्लाम में संपरिवर्तकों का जहां तक संबंध है, उनके संपरिवर्तन का निर्णय पैगम्बर के साधारण अधिमत द्वारा यह कहते हुए किया जाना चाहिए कि "किसी कार्य का परिणाम उसमें अंतर्निहित आशय द्वारा शासित होता है" और इस प्रकार किसी विवाहित गैर मुस्लिम व्यक्ति द्वारा दूसरी पत्नी रखने की इच्छा से प्रेरित ऐसा संपरिवर्तन शंकास्पद धार्मिक विधिमान्यता का है । किन्तु वहां भी जहां संपरिवर्तन वास्तविक प्रतीत होता है, वह सह पत्नियों के साथ साधारण समानता और समान न्याय का व्यवहार करने के लिए इस्लाम के जोर देने के उल्लंघन में पहली पत्नी का त्याग करके द्विविवाह करने के लिए अनुज्ञप्ति नहीं हो सकता ।

निःसंदेह तथ्य यह है कि ऐसे मामलों में संपरिवर्तन निश्चित रूप से एक धोखा है और साधारणतया उसका नव विवाहित जोड़े द्वारा अपने मूल धर्म में औपचारिक या अनौपचारिक रूप से संपरिवर्तन करके अनुकरण किया जाता है- वास्तव में वे हृदय से इस्लाम में कभी संपरिवर्तित नहीं होते हैं । विभिन्न धर्मों के साथ इस चिड़िया बल्ले के खेल को हमारी विद्यमान विधि द्वारा नियंत्रित नहीं किया गया है, यद्यपि इसकी ना तो उस धर्म द्वारा अनुज्ञा दी जाती है, जिसको बेइमानी से ग्रहण किया जाता है और न उसके द्वारा मंजूरी दी जाती है, जिसका स्वार्थी उद्देश्य के लिए त्याग किया जाता है । जो विवाहित हिन्दू पुरुष करते हैं और जिसमें गलत शिक्षित धार्मिक कृत्यकारियों और गलत सूचना प्राप्त वकीलों द्वारा सहायता की जाती है, वह हिन्दुत्व पर कपट है, इस्लाम के लिए कलंक है, देश के संविधान में अंतःकरण की स्वतंत्रता के खंड का क्रूर मजाक है और देश की विधि के विरुद्ध आपराधिक योजना बनाना है ।

अध्याय 7

संपरिवर्तन द्वारा द्विविवाह पर न्यायिक विनिर्णय

द्विविवाह करने के लिए इस्लाम में संपरिवर्तन करने की प्रवृत्ति के संबंध में न्यायपालिक में हमेशा अन्दर ही अन्दर असंतोष रहा है और न्यायालयों ने इसका नियंत्रण करने की कोशिश की है ।

विलायत राज्य बनाम सुनीला एआईआर 1983 दिल्ली 351 में दिल्ली उच्च न्यायालय की न्यायमूर्ति लीला सेठ ने यह विनिश्चित किया था कि यह अधिनियम उस व्यक्ति को लागू बना रहेगा जो विवाह के समय, पश्चात्वर्ती उसके इस्लाम में संपरिवर्तन के बावजूद, हिन्दू था और यह कि वह अधिनियम के अधीन फिर भी विवाह विच्छेद की मांग कर सकता था (अपने स्वयं के संपरिवर्तन के आधार पर के सिवाय)

पी नागेसैय्या (1988) मेटएलआर 123 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति भास्कर राव ने संपरिवर्तन द्वारा द्विविवाह की अलाभकर पद्धति की गंभीर रूप से आलोचना की थी और कहा था कि यह पुराना नियम कि संपरिवर्तन के पीछे हेतुक पर कभी प्रश्न नहीं किया जा सकता, कम से कम द्विविवाह से जुड़े हुए संपरिवर्तन के मामलों में नामंजूर किया जाना होगा । समरूप प्रेक्षण वी चन्द्रमनिकिम्मा बनाम वी सुदर्शन राव उपनाम सलीम मुहम्मद 1988 क्रिमी एलजे1894 के मामले में किए गए थे ।

अंतिम रूप से, श्रीमती सरला मुदगल बनाम भारत संघ (1995) 3एससीसी 635 के प्रमुख मामले में उच्चतम न्यायालय ने विनिश्चित किया कि इस्लाम में संपरिवर्तित हिन्दू का प्रत्येक द्विविवाह शून्य होगा और इसलिए वह भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय होगा । न्यायालय ने कहा : "चूंकि इस्लाम का न तो यह उद्देश्य है और न प्रज्ञावान मुस्लिम समुदाय का यह आशय है कि हिन्दू पतियों को केवल पुनः विवाह करने

हेतु उनकी अपनी स्वीय विधि को धोखा देने के प्रयोजन के लिए मुस्लिम होने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, अतः न्यायालयों को विधियों का यह अर्थान्वयन अपनाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए कि जिसका परिणाम इस्लाम में संपरिवर्तित हिन्दू पतियों को विधि के अनुसार अपने विद्यमान विवाह को विघटित किए बिना पुनः विवाह करने के अधिकार से वंचित करना हो ।"

उस तर्क के संबंध में जिसके अनुसार विवाहित गैर मुस्लिम व्यक्ति के इस्लाम में संपरिवर्तन के पश्चात् किए गए द्विविवाह को हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन शून्य माना जा सकता है, न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में बहस की :

"निसंदेह यह सही है कि इस्लाम ग्रहण करने के पश्चात् किसी हिन्दू पति द्वारा अनुष्ठापित विवाह अधिनियम के अधीन पूर्णतः शून्य नहीं हो सकता है क्योंकि वह अब हिन्दू नहीं रहा है, किन्तु तथ्य यह बना रहता है कि उक्त विवाह अधिनियम के अतिक्रमण में होगा, जो पूर्ण रूप से एक विवाह को स्वीकार करता है । अधिनियम के प्रयोजन के लिए अभिव्यक्ति 'शून्य' को अधिनियम की धारा 11 के अधीन परिभाषित किया गया है । उसका इस धारा के अधीन परिभाषा के क्षेत्र के भीतर सीमित अर्थ है । दूसरी तरफ उसी अभिव्यक्ति का भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अधीन एक भिन्न प्रयोजन है और वहां उसका अर्थ पूर्ण निर्वचन किया जाना है । भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अधीन अभिव्यक्ति 'शून्य' का विस्तृत अर्थ में उपयोग किया गया है । कोई विवाह, जो विधि के किसी उपबंध के अतिक्रमण में किया गया है, भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अधीन प्रयोग की गई अभिव्यक्ति के अनुसार शून्य होगा । अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित किसी हिन्दू विवाह को अधिनियम के अधीन विनिर्दिष्ट आधारों में से ही किसी पर विघटित किया जा सकता है । उस समय तक जब तक हिन्दू विवाह का विघटन किया जाता है, पति/पत्नी में से

कोई दूसरा विवाह नहीं कर सकता है । इस्लाम में संपरिवर्तन और पुनः विवाह करना, स्वयं में, अधिनियम के अधीन हिन्दू विवाह का विघटन नहीं करेगा । अतः किसी संपरिवर्तक द्वारा दूसरा विवाह अधिनियम के अतिक्रमण में होगा और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अनुसार शून्य होगा । कोई कार्य, जो विधि के आदेशात्मक उपबंधों के अतिक्रमण में है, अपने आप में स्वयं शून्य है । दूसरे विवाह की शून्यता के लिए वास्तविक कारण उस प्रथम विवाह का विद्यमान होना है जो पति के संपरिवर्तन से भी विघटित नहीं किया होता है । यदि संपरिवर्तक द्वारा से दूसरे विवाह को वैध अभिनिर्धारित किया जाता है तो यह मामले के सार को छोड़ देना होगा और कानून की आत्मा के विरुद्ध कार्य करना होगा ।"

न्यायालय ने आगे कहा कि हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन विवाहित किसी स्वधर्म त्यागी पति का दूसरा विवाह साम्यता, न्याय और अंतश्चेतना के और प्राकृतिक न्याय के भी, नियमों के अतिक्रमण में होगा । न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि :

"वह निर्वचन, जो हमने भारतीय दंड संहिता की धारा 494 को दिया है, न्याय के हित को आगे बढ़ाएगा । यह आवश्यक है कि विधि की दो प्रणालियों के बीच सामन्जस्य होना चाहिए जैसे कि दो समुदायों के बीच सामंजस्य होना चाहिए । उस निर्वचन का परिणाम, जो हमने भारतीय दंड संहिता की धारा 494 को दिया है, यह होगा कि एक तरफ हिन्दू विधि और दूसरी तरफ मुस्लिम विधि एक दूसरे की स्वीय विधियों पर अतिचार किए बिना अपने-अपने क्षेत्र में प्रवर्तित होंगी ।"

सरला मुदगल के मामलें में दिए गए पृथक निर्णय में न्यायमूर्ति आर.एम.सहाय ने वास्तव में सच कहा था जब उन्होंने कहा था कि "इस्लाम में द्विविवाह के बारे में

अत्यधिक गलतफहमी प्रचलित है" अब संपूर्णतः चित्रित रूप में द्विविवाह की कुरान संबंधी संकल्पना एक ही व्यक्ति से सुखपूर्वक विवाहित और उससे समान रूप से वह सब पाने वाली, जिसकी एक विधिपूर्ण रूप से विवाहित पत्नी अधिकारपूर्वक पति से अपेक्षा कर सकती है, दो स्त्रियों की परिकल्पना है । जहां यह संभव नहीं था वहां कुरान ने एक विवाह पर जोर दिया । जबकि कुरान के संनिन्यमों का मुस्लिम पैदा हुए व्यक्तियों द्वारा भी कठोरता से पालन किया जाना चाहिए तब यह लोकप्रिय विश्वास कि कुरान किसी गैर मुस्लिम पति को, जिसने अपनी पत्नी को विधिक विवाह विच्छेद के बिना बाहर निकाल दिया है, इस्लाम में झूठे संपरिवर्तन का आख्यापन करके पुनः विवाह करने के लिए समर्थ बनाता है, पूर्णतः झूठा है । ऐसे कपटपूर्ण ढ़ंग से किए गए गैर मुस्लिम पतियों के द्विविवाहों को मान्यता न देना वास्तव में कुरान के न्याय पर जोर देता है । इस मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय का सरला मुदगल वाला निर्णय अनआक्रमणीय है ।

सरला मुदगल वाले विनिर्णय को कतिपय क्षेत्रों में इस आधार पर अननु ग्रह के साथ देखा गया था कि उसने संविधान के अनुच्छेद 25 द्वारा गारंटीकृत अंतःकरण की और धर्म को मानने की स्वतंत्रता के व्यक्ति के मूल अधिकार का अतिलंघन किया था । इस मामले को उच्चतम न्यायालय के समक्ष लाया गया जिसने इस विचार को खारिज कर दिया । लिली थॉमस बनाम भारत संघ (2000) 6 एससीसी 227 में न्यायालय में कहा :

> "यह शिकायत भी कि न्यायालय का निर्णय अंतःकरण की स्वतंत्रता और धर्म के अबाधरूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता के अतिक्रमण के बराबर है, अस्वाभाविक है और प्रत्यक्ष रूप से ऐसे व्यक्तियों द्वारा कृत्रिम रूप से बनाई गई प्रतीत होती है जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 25 के अधीन गारंटीकृत रक्षात्मक मूल अधिकार के अधीन अपने आपको छिपाने का प्रयास करके विधि का अतिक्रमण किया है । अपेक्षित निर्णय के द्वारा किसी व्यक्ति को अंतःकरण की स्वतंत्रता और धर्म के प्रचार से

वंचित नहीं किया गया है । संविधान के अनुच्छेद 25 के अधीन गारंटीकृत स्वतंत्रता ऐसी स्वतंत्रता है जो दूसरे व्यक्तियों की समरूप स्वतंत्रता पर अतिक्रमण नहीं करती है । संविधान की योजना के अधीन प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पसंद के धार्मिक विश्वास को न केवल मानने का मूल अधिकार है किन्तु उसे अपने विश्वास और विचार को ऐसी रीति से, जो दूसरों के धार्मिक अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अतिलंघन नहीं करती है, प्रदर्शित करने का भी अधिकार है । सरला मुदगल वाले मामले में यह तर्क दिया गया था कि किसी संपरिवर्तक हिन्दू को दंड संहिता के अधीन अभियोजन के लिए दायी बनाना इस्लाम के, संपरिवर्तन पर ऐसे व्यक्ति द्वारा अपनाया गया धर्म, विरुद्ध होगा । ऐसा किया गया अभिवाक् इस्लाम के सिद्धांतों और उसकी शिक्षाओं के बारे में याचिकाकर्ताओं की अज्ञानता को दर्शित करता है ।

पारंपरिक मुस्लिम विधि के अधीन द्विविवाह के लिए अनुज्ञा की सही स्थिति के बारे में न्यायालय ने कहा :

"मुस्लिम विधि के अधीन भी विवाहों की बहुलता पति को बिना शर्त प्रदान नहीं की गई है । अतः यह कहना इस्लाम की विधि के प्रति अन्याय होगा कि संपरिवर्तक उस विधि के अधीन, जिससे वह संपरिवर्तन के पूर्व संबंधित था, अपने विवाह के रहते हुए भी द्विविवाह करने का हकदार है । विधि के ऐसे उल्लंघनकर्ताओं को, जिन्होंने दूसरा विवाह किया है, यह आग्रहपूर्वक कहने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती कि ऐसा विवाह देश में प्रचलित साधारण दंड विधि के अधीन अभियोजन की विषय-वस्तु नहीं बनाया जाना चाहिए । इस्लामी विधि के उन्नतिशील दृष्टिकोण और उसकी विस्तृत पहुंच को, प्रत्यक्ष रूप से विषय संबंधी कामुकता में लिप्त होने वाले ऐसे मुकदमा लड़ने वालों के द्वारा, जो अवैध साधनों से उसकी पूर्ति करना चाहते हैं, जो उस विधि के अधीन, जिससे वे अभिकथित संपरिवर्तन के पहले संबंधित थे, अपराध करने के दोषी पाए जाते हैं,

संकीर्ण और संकुचित किए जाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । यह किसी का मामला नहीं है कि किसी ऐसे संपरिवर्ती को धार्मिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किसी अन्य धार्मिक अधिकार का प्रयोग करने से वंचित किया गया है । इस्लाम को, जो एक पवित्र, प्रगतिशील और तार्किक दृष्टिकोण के साथ आदरणीय धर्म है, संकीर्ण विचारधारा नहीं दी जा सकती जैसा विधि के अभिकथित अतिक्रमण करने वालों के द्वारा करने का प्रयास किया गया है ।"

अध्याय 8

सिफारिशें

सभी बातों पर विचार कर चुकने पर भारत के उच्चतम न्यायालय ने 1995 के अपने सरला मुदगल वाले विनिर्णय में सदैव के लिए विधि को परिनिर्धारित कर दिया और उसकी 2000 के लिली थॉमस वाले मामले में पुष्टि कर दी ।

हम उच्चतम नयायालय की सोच के साथ पूर्ण सहमति में हैं । यह अधिनिर्णय कि कोई विवाहित गैर मुस्लिम इस्लाम ग्रहण करने पर भी अपना पहला विवाह विघटित कराए बिना दूसरा विवाह नहीं कर सकता है निःसंदेह द्विविवाह पर इस्लाम की विधि की आत्मा के अनुरूप है ।

निःसंदेह अब यह भारत की अनक्रमणीय विधि है - चाहे कोई कुछ भी भ्रामक रूप से इस्लाम की विधि होने के बारे में उपधारणा कर सकता है । दुर्भाग्य से उच्चतम न्यायालय द्वारा परिनिर्धारित इस विधि को अब सार्वजनिक रूप से जनता में जाना जाता है और इसका लगातार बहुत से मामलों में अतिक्रमण किया गया है । अतः इस समय की आवश्यकता उच्चतम न्यायालय के विनिर्णय को स्पष्ट विधायी उपबंध में परिवर्तित करने की है जिसे देश के सभी विवाह संबंधी विधि कानूनों में अंतःस्थापित किया जाए ।

यद्यपि ये विनिर्णय हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के संदर्भ में न्यायालय द्वारा किए गए थे किन्तु वे ऐसे अन्य कुटुम्ब विधि कानूनों द्वारा, जो समरूप हैं, शासित सभी विवाहों को लागू होंगे । उस प्रवृत्ति के अन्य पहलुओं का, जो विवाहित गैर मुस्लिमों के बीच इस्लाम ग्रहण करके पुनः विवाह करके धर्म का उल्लंघन करने का प्रयास करने के लिए प्रवृत्त हैं सभी ध्यानपूर्वक विचार करने पर, हम विभिन्न कुटुम्ब विधि कानूनों में निम्नलिखित अतिरिक्त परंतुकों को अंतःस्थापित करने की सिफारिश करते हैं :

1. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में, धारा 17 के पश्चात् एक नई धारा 17-क इस आशय की अंतःस्थापित की जाए कि कोई ऐसा विवाहित व्यक्ति, जिसका विवाह इस अधिनियम द्वारा शासित होता है, धर्म परिवर्तन करने के पश्चात् भी तब तक पुनःविवाह नहीं कर सकता है जब तक कि पहला विवाह विधि के अनुसार विघटित नहीं कर दिया जाता है या शून्य और अकृत नहीं घोषित कर दिया जाता है और यदि ऐसा कोई विवाह किया जाता है तो वह शून्य और अकृत होगा और भारतीय दंड संहिता, 1860 की धाराओं 494-495 का लागू होना आकर्षित करेगा ।

2. एक समरूप उपबंध क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872, पारसी विवाह और विवाह विच्छेद अधिनियम, 1936 और मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939 में यथोचित स्थानों पर अंतःस्थापित किया जाए ।

3. मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939 की धारा 4 के उस परंतुक का, जो कहता है कि यह धारा किसी ऐसी विवाहित स्त्री को, जो मूल रूप से गैर मुस्लिम थी, यदि वह अपने मूल धर्म में प्रत्यावर्तित हो जाती है तो, लागू नहीं होगी, लोप कर दिया जाए ।

4. विशेष विवाह अधिनियम, 1954 में इस आशय का एक परंतुक अंतःस्थापित किया जाए कि यदि कोई विद्यमान विवाह, चाहे वह किसी भी विधि से शासित हो, किसी भी पक्षकार द्वारा धर्म परिवर्तन करने के कारण अंतः-धार्मिक हो जाता है तो आगे से वह विशेष अधिनियम के उपबंधों द्वारा, जिनके अंतर्गत उसके द्विविवाह-विरोधी विवाह उपबंध भी हैं, शासित होगा ।

5. भारतीय दंड संहिता, 1860 की धाराओं 494-495 के अधीन द्विविवाह से संबंधित अपराधों को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में आवश्यक संशोधन द्वारा संज्ञेय बनाया जाए ।

यद्यपि हम इस तथ्य से पूर्णतः सहमत हैं कि द्विविवाह पर मुस्लिम विधि की पारंपरिक समझ गंभीर रूप से दोषपूर्ण हैं और पूर्णरूप से इस्लाम की सच्ची विधि के साथ विरोध में हैं, किन्तु हम किसी अलाभकर विवाद से अपनी सिफारिशों को दूर रखने के लिए हम इस संबंध में मुस्लिम विधि में किसी परिवर्तन की सिफारिश नहीं कर रहे हैं ।

ह/-

माननीय डा0 न्यायमूर्ति एआर.लक्ष्मणन्

अध्यक्ष

ह/-

प्रो0 डा0 ताहिर महमूद

सदस्य

ह/-

डा0 ब्रह्म ए. अग्रवाल

सदस्य-सचिव